International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 04, No. 01(II), January - March, 2022, pp.49-56

राजस्थान की लोक सांस्कृतिक परियावर्ण में नारी एवं उनका सांस्कृतिक योगदान

डॉ. हीरालाल बैरवा*

i:Lrkouk

भारतवर्ष का हृदयस्थल राजस्थान विशाल और विख्यात पतंगाकार प्रदेश है। मरूस्थलीय लू की लपटों से झुलसता तथा अरावली की शीतल, मन्द तथा सुहावनी हवा के झोकों से झूमता राजस्थान अपनी निराली प्राकृतिक छटा तो रखता ही है, साथ ही साथ सांस्कृतिक दृष्टि से भी अपनी विशिष्टता रखता है। राजस्थान के नर–नारियों की अपनी मौलिक विशेषता है।

राजस्थान का लोक मानस गीतों में झुमता है, नृत्यों में थिरकता है, गाथाओं में मस्त होता है, नाटकों में आनन्दित होता है, एवं लोकोत्सवों में रस निमग्न हो जाता है। वह लोकोत्सवों, अनुष्ठानों तथा तीज–त्यौहारों की अनुपालना में आनंदित होता है। इसे परम्पराओं से प्यार है। रीति–रिवाजों से अनुराग है। देवार्चना में आस्था है। शकुन–अपशकुनों में विश्वास है। वचन तथा प्रतिज्ञा पालन से श्रध्दा तथा छल–कपट से नफरत करने वाला यहॉ का लोक मानस देवालयों, देवरों, थानों तथा समाधियों पर माथा टेकता है और आध्यात्मिक उर्जा प्राप्त करता है।

भारतीय संस्कृति में नारी की विशिष्ट महत्ता स्थापित थी तथा समाज में नारी सम्बन्धी ऐसे मूल्यगर्भित विश्वास और विचार पनपे जो मूलतः संस्कारों से ही जुड़े थे। नारी सम्बन्धी भारतीय संस्कृति की इस अवधारणा के माध्यम से वैयक्तिक,सामाजिक एवं मध्यकालीन सांस्कृतिक विकास की आधार भूमि तैयार हुई तथा इस प्रदेश के संस्कारों के निर्माण में नारी का अमूल्य योगदान रहा।

मध्ययुगीन स्त्रियों के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है–उनका सांस्कृतिक योगदान। धार्मिक, सामाजिक उत्सवों तथा त्यौहारों को मनाना सभी वर्गों की स्त्रियों के लिये आनन्द तथा उल्लास का विषय था। सभी वर्ग की स्त्रियॉ अपनी प्रफुल्लता तथा धार्मिक विश्वासों को निभाने में तत्पर रहती थी। सामाजिक उत्सवों तथा परम्पराओं को जीवित रखने में स्त्रियों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

लोकोत्सव एवं नारी

लोकोत्सव या त्यौहारों का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। यह हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वैयक्तिक स्तर पर यह हमारे जीवन की एकरसता को भंग कर उसमें नई उमंग और स्फूर्ति का संचार करते हैं तथा सामाजिक स्तर पर हमें अपने परंपरागत आदर्शो एवं जीवन–मूल्यों का स्मरण कराते हुए शेष समाज के साथ हमें सांस्कृतिक संबंध–सूत्र से जोड़ते हैं। वैसे तो हिन्दूओं का यह पर्वोत्सव सभी चातुर्वणों के लिए समान नही, तो न्यूनाधिक महत्व रखते हैं परन्तु राजपूत–घरानों में इनको मानने की अपनी विशिष्ट राजोचित परिपाटियां एवं परंपरायें रही है, जिनमें स्थान और विधि–भेद से थोड़ा अंतर होते हुए भी मूलतः कोई स्वरूपगत भेद नहीं है।

भारत की सांस्कृतिक परंपराओं के अन्तर्गत जो त्यौहार अथवा लोकोत्सव सार्वदेशिक है, वे तो समुचे राजस्थान में उल्लास एवं उमंग के साथ मनायें जाते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे त्यौहार भी है, जो इस प्रदेश की लोक संस्कृति के परिचायक है। राजस्थान की इन्द्रधनुषी संस्कृति की पहचान कराने वाले उत्सव तथा उन उत्सवों में नारी की विभिन्न भूमिकाओं की झलक दृष्टव्य है।

इन सभी लोकोत्सवों का इतिवृत संक्षेप में यहॉ प्रस्तुत है –

* सह आचार्य–समाजशास्त्र, एस.पी.एन.के.एस. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा, राजस्थान।

लोकोत्सव– तीज, गणगौर, होली

- **तीज**

राजस्थान को ''मीरा का देश'' ''मरू के टीलों का प्रदेश'' और साहस तथा शौर्य के लिये ''वीरो – विरांगनाओं का देश'' कहा गया है।[1]यहॉ आये दिन त्यौहार आते हैं, इन त्यौहारों में ''श्रावणी तीज'' का पर्व भी एक है। राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में प्रमुख योगदान प्रदान करने वाले राजपूत जाति के लोग तीज बड़े चाव से मनाते है। यह श्रावण शुक्ल तृतीया को मनाई जाती है।[2] विशेष रूप से यह स्त्रियों का त्यौहार माना जाता था। इस दिन लम्बी तपस्या के बाद पार्वती शिव को प्राप्त करने में सफल रही, इसी उपलक्ष में यह त्यौहार मनाया जाता है।[3] इस तीज को स्त्रियॉ व्रत रखती थी और चन्द्र दर्शन के बाद फल, सत्तु आदि खाती थी।[4] इस अवसर पर वृक्षों की डालों पर रस्सों के झूले डाले जाते थे और स्त्रियॉ गीत गाती हुई झूलती थी। इस अवसर पर स्त्रियां हरे रंग के कपड़े पहनती थी। संध्या को नीमड़ी की विधिवत् पूजा कर बालिकायें अनुकूल सुन्दर वर की कामना करती है तथा सुहागिनें पति के दीर्धायु की कामना करती है। वह तीज माता की कथा भी सुनती है तथा मंदिरों में देवों के दर्शन भी करती है।

''तीज त्यौहारों बावड़ी ले डूबी गणगौर'' अर्थात् तीज वापिस त्यौहारों को लेकर आई और गणगौर उनको लेकर डूब गई। राजस्थान में गर्मियों के दिनों में कोई भी त्यौहार नहीं मनाया जाता। 2–3 महिनों तक मनोरंजन की दृष्टि से सामाजिक जीवन में निरसता आ जाती है। तीज के त्यौहार के आने के साथ ही त्यौहारों की शुरूआत हो जाती है। तीज के त्यौहार के पहले से ही चौमासा के गीत प्रारम्भ हो जाते हैं। ये चौमासा के गीत मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर और शेखावाटी के शुष्क प्रदेशों में विशेष रूप से गाये जाते हैं। अपने–अपने मोहल्लों में स्त्रियों के झुंड गीत गाना प्रारम्भ कर देते हैं, गॉव–गॉव और कस्बों में जब ये गीत गाये जाते हैं तब लोक जीवन में उल्लास और उत्साह आ जाता है और सरसता उमड़ पड़ती है। तीज का त्यौहार मुख्यतः बालिकाओं और नव विवाहितों का त्यौहार है। इस त्यौहार के अवसर पर स्त्री समुदाय नये वस्त्र धारण करते हैं और घरों में पकवान बनाये जाते हैं। एक दिन पूर्व बालिकाओं का 'सिंझारा' (श्रृंगार) किया जाता है। तीजोत्सव पर महिलायें हाथ पैरों पर मेंहन्दी मांडती है तथा विवाहिता बालिकाओं के ससुराल में सिंझारा वस्त्र आदि भेंट स्वरूप उनके माता–पिता भेजते हैं। इस दिन लड़की अपने पिता के घर जाती है। राजस्थान में एक प्रथा है कि विवाह के बाद के पहले श्रावण में सास व बहू को कभी भी एक साथ नहीं रहना चाहिये, इसलिए ससुराल वाले किसी अनिष्ट के भय से उसे पीहर भेज देते हैं। इस त्यौहार के दिन किसी सरोवर के पास मेला भरता है। गणगौर की प्रतीमा भी कहीं–कहीं निकाली जाती है। तीज के इस त्यौहार को कहीं–कहीं ''हरियाली तीज'' भी कहते हैं। मारवाड़ क्षेत्र के राजपूत घरानों में विशेषतः जोधपुर में आखातीज के दिन सामुहिक रूप से ''अमलपान'' की परिपाटी है, जिसे ''अमल गालना'' कहते हैं। इस दिन ''गलवाणिया'' बनाया जाता था। जोधपुर के महाराजा श्रीजसवन्तसिंह (प्रथम) की रानी प्रतापदे को ''राणीपदा'' दिये जाने के प्रसंग में आखातीज के दिन गाड़ा भर गुलवाणिया दिये जाने का उल्लेख मिलता है।

'' आखातीज गाड़ा गुलवाणी दे '' [5]

इस दिन लम्बी तपस्या के बाद पार्वतीजी, शिवजी को प्राप्त करने में सफल रही थी, उसी के उपलक्ष में यह त्यौहार मनाया जाता है।[6] इस दिन विवाहित स्त्रियां उपवास रखकर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करती है।[7] स्त्रियां चन्द्र–दर्शन के बाद ही अपना उपवास खोलती थी।

जयपुर क्षेत्र में सावन सुदी 3 को तीज का पर्व बड़े चाव से मनाया जाता है। जयपुर की तीज की सवारी का जुलूस उदयपुर से भी कही अधिक भव्य होता था। यहॉ परंपरागत शान–शौकत के साथ तीज का एक जुलूस निकाला जाता है। यह जुलूस नगर–प्रासाद के रनिवास से प्रारम्भ होकर नगर के प्रमुख राजपथ पर छोटी–चौपड़ और चौगान से होता हुआ नगर–प्रासाद के पीछे तालकटोरा के किनारे के मनोहारी वातावरण में विसर्जित होता है। यह जुलूस 2 दिन तक निकाला जाता है और हर्षोल्लास के इस 2 दिवसीय आयोजन में कोतवाली चौपड़ पर बाजे तथा शहनाई वादन होता है। इस पर्व पर कसूमल वस्त्र धारण किये जाते थे। कर्नल टॉड ने जयपुर की तीज के बारे में लिखा है कि –

" Red garments are worn by all classes on this day, and at Jeipoor clothes of this colour are presented by the Raja to all the chiefs. At that court, the tees is kept with more honour than at Oodipoor. An image of Parvati on the tees, richly attired, is borne on a throne by women chanting hymns, attended by the Prince and nobles."

इस प्रकार जयपुर में तीज का त्यौहार केवल राजस्थान में ही नहीं, बल्कि पूरे भारत में प्रसिद्ध है।

उदयपुर में भी तीज का पर्व हर्षोल्लास से मनाया जाता था। महाराणा जगनिवास महल में गोठ करते थे, जहॉ वेश्याऐं रंगीन रस्सों के झूलों पर झूलती और गायन करती थी। शाम को जुलूस के साथ नाव में सैर करते हुए महाराज या तो हाथी–घोड़े पर सवार हो बाजार होते हुए महलों में जाते वरना तामजाम में बैठकर सीधे महलों में आ जाते थे।[9] इस दिन बड़ा–वारा होता था तथा महारानी को महाराण की ओर से सिरोपाव प्राप्त होता था।[10]

विदित हो कि उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि रजवाड़ों में श्रावण शुक्ल तृतीया को 'छोटी तीज' तथा भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की तृतीया को जो 'कजली तीज' या 'काजलिया तीज' के नाम से विख्यात है, 'बड़ी तीज' कहते हैं।[11] उक्त रजवाड़ों में मुख्य तीजोत्सव इसी 'काजलिया तीज' को मनाया जाता है। वीरविनोद के अनुसार इसका 'बड़ी तीज' नाम महाराणा राजसिंह ने प्रचलित किया था।[12]

तीज, विशेषतः पहली तीज पर अपने प्रवासी प्रियतम को घर लौट आने के मार्मिक आव्हानों से राजस्थानी लोक गीत भरे पड़े हैं –

आम्बैजी बैठी कोयलड़ी, दोय सबद सुणावैजी।
जाय ढौले जी नै यूं कहीजै, पैली तीज पधार।।[13]

गणगौर की भॉति, तीज के पहले दिन भी नववधुओं और बहन–बेटियों को 'सिंजारा' भेजा जाता है, जिसमें प्रायः कसूमल (लाल) रंग की पोशाकें, मिष्ठान आदि होते हैं। इस अवसर पर झूला झूलने की भी प्रथा है। झूला झूलते समय राजपूत घरानों में प्रचलित एक और रीति का उल्लेख कर देना भी असंगत नहीं होगा। राजपूत ललनाऐं अपने पति का नाम नहीं लिया करती परन्तु तीज के दिन झूला झूलते समय उनकी समवयस्क सखियों अथवा परिवार की महिलाओं के द्वारा उनसे हठ पूर्वक पति का नाम बोलने को कहती है, जिसे वे सीधे न कहकर पद्य में बड़े ही अनूठे ढ़ंग से कहती है। किसी लजीली नववधू या नखराली नायिका के बार–बार कहने पर भी पति का नाम न लेने पर उसे 'साटकियो' की मार सहनी पड़ती है, जिससे विवश होकर उसे अपना पति का नाम लेना ही पड़ता है।

सिरोही जिले में तीज की पूजा के अंतिम दिन विवाहिता बहिनों के भाई अपनी बहिनों को भेंट और पौशाक देते हैं। यदि सगा भाई न हो तो कुटुम्ब–कबीले का भाई यह कार्य सम्पन्न करता है। इसके पीछे एक दर्द पूर्ण कथा है कि अंतिम पूजा के दिन पुराने जमाने में किसी बहिन को भाई उपहार देने नहीं आया। उसने अपने भाई की बहुत ही प्रतीक्षा की। अंत में वह इस मानसिक वेदना के कारण कि उसके भाई के हृदय में अपनी बहिन के प्रति कोई स्नेह नहीं है, वह जल में गिर पड़ी, तभी उसी समय उसका भाई वहॉ पहुॅचा किन्तु वह तो तब तक जल–मग्न हो चुकी थी।[14]

मीणा, आदिवासी स्त्री–पुरूष नाच–कूद, सुरापान, रंगारंग के साथ इस तीज के त्यौहार पर अनेक मनोरंजन करते थे तथा अपने घरों में विशेष भोजन का आयोजन करते थे।[15]

- **गणगौर**

सांस्कृतिक विविधताओं से ओत–प्रोत राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है, जिसकी मिट्टी तीज–त्यौहारों की महक से सदैव गंधायित रहती है। फागुन और होली के गीतों की गूंज समाप्त भी नहीं हो पाती है कि चैत्र के शुरू होते–होते बालिकाओं के मधुर कंठ से गॉव–गॉव में गणगौर के रसीले गीत गूंजने लग जाते हैं। राजस्थान के सामाजिक व धार्मिक त्यौहारों में गणगौर का त्यौहार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

पर्वो की मनोहारी छटाओं में सराबोर लोक पर्वों की सशक्त पहिचान है रंगीले राजस्थान की गणगौर। ''गण'' का अर्थ शिव तथा ''गौर'', गौरी या पार्वती है। अतः गणगौर पर्व में शिव व पार्वती की आराधना कर कुमारियॉ अपने लिये उपयुक्त वर तथा नारियॉ अपने अखण्ड सुहाग की कामना करती हैं।[16]

राजस्थान में 'सुहाग–पर्व' के रूप में सबसे कहीं अधिक प्रसिद्ध गणगौर मांगलिक त्यौहार है। चैत्र कृष्ण प्रतिपदा से चैत्र शुक्ल तृतीया तक अर्थात् होली के दूसरे दिन से सोलह दिनों तक समारोहिक रूप से मनाया जाने वाला रमणियों का यह पर्व प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर है, साथ ही नये की शुरूआत और परम शुभ का प्रतीक भी है। भगवान शिव 'ईसर' और गणगौर पार्वती के रूप में पूजे जाने की परंपरा पारिवारिक–सामाजिक है। विवाहित सुहागिन महिलायें गणगौर का पहला पर्व अपने नैहर में ही मनाती है, जहॉ नाना व्यंजनों के साथ गौरी गणगौर को सुवस्त्रों से विभूषित करके अलंकृत किया जाता है। महिलाऐं मिट्टी की गौर बनाकर पूजती है। गणगौर के दिन से पूर्व दिन को 'सिंजारा' कहा जाता है।[17] महिलाओं की स्वर लहरी –

''पूजण द्यो गणगौर भॅवर म्हानै पूजन द्यो गणगौर'' गीत में पूजा की मूल भावना व्यक्त की जाती है। गणगौर पर महिलाऐं राख के 5 पिंड बनाकर 8 दिनों तक उन्हें पूजती है। पर्व के 16 दिन बाद ये पिंड किसी कुॅऐं, बावड़ी, तालाब या झील में विसर्जित कर दिये जाते हैं। मिलन–संयोग का पर्व गणगौर मूलतः नव विवाहित महिलाओं के सुहाग की और कुॅवारियों के सुयोग्य वर की कामना का पर्व है। इस त्यौहार में घेवर देने की एक विशेष प्रथा है। गणगौर और घेवर का साथ पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में आगामी उल्लास तथा सुख का परिचायक है। गणगौर पर बाग–बगीचों एवं रास्तों में गणगौर के गीत गाती हुई महिलाऐं निकलती है तथा गौरी–पूजा करती है और मंगल कामनायें व्यक्त करती है। पीतल या ताम्बे के लोटे को अपने सिर पर रखकर सजी–धजी कन्यायें या महिलायें कुॅओं–सरोवरो से पानी लाती है तथा उन पर फूल–पत्तियॉ भी रखती है। गणगौर की पूजा के लिए घरों की भित्तियों पर गणगौर चित्रित की जाती है। महिलाओं की गणगौर कलात्मक और कुॅवारियों की गणगौर सहज ही होती है। गणगौर पर्व के दौरान 'शीतला–अष्टमी' के दिन से हर दिन सायंकाल को 'बन्दोला' निकाला जाता है, जिसमें महिलायें घरों से गेहूॅ, चना तथा मक्की का विशेष खाद्य पदार्थ 'घूघरी' लाकर उसे खाती है। गणगौर की पूजा के समय गीत गाये जाते हैं और व्रत–कथायें सुनाई जाती है। घरों में महिलायें होलिका–दहन के दूसरे दिन और फागुन के समापन के साथ ही गणगौर की 16 दिवसीय पूजा की तैयारियों में जुट जाती है। वे अपने घरों के चौक पूरती है, अल्पनाऐं बनाकर गणगौर की प्रतिमा बनाती है। लोक भाषा में गणगौर 'गोरल' या 'गौर' है तो उसके पति 'ईसर' है। इस तरह दोनों शिव–पार्वती के प्रतीक ही है। कहा जाता है कि भगवान शिव को पति रूप में पाने के लिए पार्वतीजी ने कठिन तपस्या की थी और उससे प्रभावित होकर शिवजी ने उसे पत्नी रूप में स्वीकार किया था। तब से नारी समाज में यह आस्था व्याप्त हो गई कि गौरी की पूजा करने से अच्छा वर मिलता है और सुहागिन महिला का पति चिरायु होता है। गणगौर की पूजा के दो रूप है – 'छोटी गणगौर' और 'बड़ी गणगौर'। छोटी गणगौर की पूजा होली के दूसरे दिन से तृतीया तक और बड़ी गणगौर की पूजा तृतीया से अगली तृतीया तक की जाती है। इस तृतीया को महिलाऐं व्रत रखती है तथा पूजा के गीत भी गाती है –

गौर–गौर गोमती, ईसर पूजै पारबती।

राजस्थान की हर बड़ी रियासत तथा जागीरी संस्थान में गणगौर की अपनी–अपनी कास्ठ प्रतिमायें है, जिन्हें इस दिन विशेष वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया जाता है तथा अपरान्ह में रानियों द्वारा उनका पूजन किये जाने के बाद उनकी सवारी बड़े धूमधाम से राजकीय लवाजमें के साथ निकाली जाती हैं। हकीकत बहियों से प्रमाणित होता है कि इस त्यौहार को जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, कोटा आदि राज्यों में बड़ी धूम–धाम के साथ मनाया जाता था, जिसमें स्वयं राज्यों के राजा, उनके सामन्त तथा कर्मचारी गणगौर की सवारी में सम्मिलित होते थे।

जयपुर में जनानी ड्यौढ़ी (राजा के अन्तःपुर) में महारानियों द्वारा गणगौर की प्रतिमा का पूजन किये जाने के बाद इसकी सवारी शहर में निकलती थी। जयपुर में गणगौर की सवारी में अकेली गणगौर ही होती थी। इस परंपरा के पीछे यह मान्यता है कि एक बार किशनगढ़ नरेश ईसर की प्रतीमा जबरन उठाकर ले गये थे, तब से यहॉ अकेली गणगौर की प्रतिमा सवारी में निकलती थी। जनानी–ड्यौढ़ी के लोग लाल पोशाक में सज्जित होकर गणगौर के साथ चलते और उनके आगे हाथी, घोड़े, ऊॅट, रथ तथा पालकी आदि पूरा लवाजमा साथ में चलता था। महाराजा चौगान स्थित 'मोती बुर्ज' में बैठकर अपने सामन्तों के साथ इस जुलूस को देखते

थे। गणगौर की सवारी 'पाल के बाग' तक जाकर जनानी ड्यौढ़ी लौट आती थी, तथा महाराजा बादल महल में चले जाते थे। महाराजा सहित सभी दरबारियों की पोशाकें लाल ही होती थी। यहॉ नाच–गान चलता था तथा सभी दरबारी महाराजा को नजर पेश करते थे।[18]

राजस्थान में उदयपुर का गणगौर पर्व सर्वाधिक प्रसिध्द रहा है, जिसके प्रत्यक्ष दृष्टा कर्नल टॉड ने लिखा है –

" Whoever desires to witness one of the most imposing and pleasing of Hindu festivals, let him repair to odipoor, and behold the rites of the Lotus Queen Pudma , the Gouri of Rajasthan.[19]

अर्थात् – ''हिन्दूओं के अत्यन्त प्रभावशाली और आनन्ददायक त्यौहारों में से किसी त्यौहार को जो कोई भी देखने का इच्छुक है तो उसे पंकज रानी पद्मावती की धार्मिक रीति–रिवाजों (धार्मिक क्रियाओं) को देखना चाहिए। लोटस क्वीन अर्थात् पंकज रानी पद्मावती को ही राजस्थान की ''गौरी'' कहा जाता है।''

उदयपुर में मनाये जाने वाले त्यौहार में गणगौर की सवारी का 'कर्नल टॉड' और कविराज 'श्यामलदास' ने बड़ा रोचक वर्णन किया है। यहॉ अट्टालिकाओं में बैठकर सभी जाति की स्त्रियां, बच्चे और पुरूष रंग–रंगीले वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर गणगौर की सवारी को देखते थे। तदनन्तर महलों से गणगौर माता की सवारी में सुन्दर पोशाकों में सजी–धजी दासियों के झुंड भी रहते थे। सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत गणगौर को सिंहासन सहित एक दासी अपने सिर पर उठाये आगे–आगे चलती तथा उसके पीछे दासियों का झुंड गीत गाता हुआ आगे बढ़ता था। यह सवारी तोप के धमाके से और नगाड़ों की आवाज के साथ राजप्रासाद से आरम्भ होकर पिछौला तालाब के गणगौर घाट तक बड़ी धूमधाम से पहुॅचती थी और नौका–विहार तथा आतिशबाजी के प्रदर्शन के बाद समाप्त होती थी।[20] उदयपुर के गणगौर के जुलूस की अपूर्व शोभा को देखकर देशी रियासतों में नियुक्त ब्रिटिश अधिकारी ''सर केनेथ फिट्ज'' भी आश्चर्य–मुग्ध हो गये थे। उन्होंने इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि –

''But perhaps the most wonderful of all such spectacles was that which took place at Udaipur , the very centre and focus of Rajput chivalry , at the festival known as "Gangor" which signalised the coeing of spring and thankfulness for the fertility of the earth."[21]

उदयपुर में गणगौर का त्यौहार 2 बार मनाया जाता था। पहला चैत्र वदी तीज को और दूसरा वैशाख वदी तीज को। दोनों का उत्सव एक जैसा ही होता था। वैशाख वदी तीज के त्यौहार को ''धींगा गणगौर'' कहा जाता था। राजस्थानी में 'धींगा' जबरदस्ती को कहा जाता है। महाराणा राजसिंह प्रथम (सन् 1629–1680) ने अपनी छोटी रानी को प्रसन्न करने हेतु यह त्यौहार जबरदस्ती आरम्भ किया था, इसलिए इसे 'धींगा गणगौर' कहते हैं।[22] धींगा गणगौर की पूजा विधवायें एवं सुहागिने दोनों ही करती थी। इस त्यौहार की पूजा चैत्र शुक्ल तीज से आरम्भ की जाती है। स्त्रियां दीवार पर धींगा गवर का चित्र बनाकर पास में गणेशजी का भी चित्र बनाती है। वैशाख कृष्ण तीज को विशेष पूजा की जाती है। रात्रि में औरतें नाचती–गाती हुई अन्य स्थानों पर प्रतिष्ठित धींगा गवर के दर्शनार्थ जाती थी तथा कुछ औरतें स्वांग भी धारण करती थी। फिर ब्रह्म मुहूर्त वेला में धींगा गवर का जल में विसर्जन कर दिया जाता था। रात्रि में औरतें बेंत लेकर चलती है और सड़क के आजू–बाजू बैठे हुए पुरूष रिश्तेदारों पर बेंत से हल्का सा प्रहार करती थी। यदि कोई पुरूष फिकरे कसने की कोशिश में बेंत से पीट जाता तो उसे शुभ शकुन माना जाता था। इसलिए यह ''बेंतमार धींगा गवर'' के मेले के रूप में प्रसिद्ध है।[23] यह उत्सव मेवाड़ राज्य के अतिरिक्त कहीं भी नहीं होता था।

जोधपुर में गणगौर को 'राज–त्यौहार' के रूप में मनाया जाता था। यहॉ पर गणगौर 'मेले लोटिया' के रूप में मनाते हैं। सात चॉदी या पीतल के लोटे एक के ऊपर एक सिर पर सजाकर कुॅआरी कन्याऐं गीत गाते चलती है, विवाहिता दूब और पानी से पूजा करती है।[24] मारवाड़ के शहरों तथा गॉवों में भी गली, मोहल्लों, चौपालों पर गणगौर त्यौहार पर गणगौर पूजन के कार्यक्रम आयोजित किये जाते है।

जोधपुर मेहरानगढ़ के दुर्ग के बाड़ी के महलों में मुहूर्त के अनुसार सफाई व पुताई कराई जाती तथा माताजी की हमेशा वाली साधारण पोशाक बदली जाती थी। मूर्ति को साफ करके मुहूर्त पर श्रृंगार व 'चित्रावरण' किया जाता था। चॉदी की मूर्ति के भंवारे, मेंहन्दी, मुख पर रंग, मस्तक पर श्रृंगार व चरणों में मेंहन्दी लगाई

जाती तथा ऑखें लगाकर उनका श्रृंगार काजल आदि से किया जाता था। गणगौर माताजी की पोशाक तीज के दिन 'बडी' (बदलने) करने का मुहूर्त जोशी द्वारा 'श्रीजी' की चन्द्रमा की दशा देखकर निकाला जाता था। माताजी की पोशाक बदलने एवं श्रृंगार करने का कार्य सुहागन स्त्रियों द्वारा ही किये जाने की परंपरा रही थी। माताजी की पोशाक में[25] कॉचली, लेहंगा, ओढ़ना आदि पोशाक पर गोटा तुरी का काम होता तथा उस पर रंग लाल, केसरिया तथा सपतालू आदि होता था। माताजी के गहनों में रखड़ी, मॉग–टीका, कानों में झूमर व झेला, नथ, बाले, मोरपट्टा, गले में तिमणियां, हंस, हांसली, सतलड़ा, कन्दोरा, हथफूल, बाजूबन्द, तीबां पतियां वाला चूड़ा, अंगूठियां व पाव में रमजोल आदि गणगौर माताजी को धारण करवाये जाते थे।[26] शहर में मोहल्ले की स्त्रियां बांस की छाब में लाल कपड़ा बिछाकर उस पर गणगौर स्थापित करती तथा कुछ स्त्रियां घर की दीवार पर गणगौर बनाकर उसकी पूजा करती थी। माटी के कुंडे में जवारे बोये जाते और मंत्र के साथ उनकी पूजा की जाती थी। पूजा के थाल में 16 दातुन केर के जिसमें एक ओर मेंहन्दी लगी होती थी, मेंहन्दी, चौसरा, सुपारी, भोग के लिए चुरमा, चोटी वाला नारियल, 16 लड्डू आदि सामानों की आवश्यकता पूजा के थाल में होती थी।

गणगौर माताजी की पूजा कमरे में ही की जाती थी। सर्व प्रथम महारानीजी के द्वारा माताजी की मूर्ति को शुद्ध जल का छिंटा दिया जाता था। दातुन करवाने के लिए महारानीजी द्वारा दातुन को साड़ी के पल्लू को दोनों हाथों से पकड़कर दातुन को माताजी के मुख से 8 बार लगाया जाता, उसके पश्चात् जल का आचमन व 8 बार चूरमें का भोग चढ़ाया जाता था। फूलों का चौसरा पहनाया जाता तथा माताजी के चरणों में चोटी वाला नारियल रखकर रोकड़ रूपये भेंट किये जाते थे।[27]

पुराने समय में उपयुक्त पूजा एवं रीत पूर्ण होने पर 4 खालसावालियां अर्थात् राजकीय डावड़िया गणगौर माताजी की मूर्ति को उठाकर बाहर चौक में लाती थी। उस समय में गणगौर माताजी जनानी–ड्यौढ़ी के रावटी (किले में ही बनी हुई रावटी) के महलों में विराजती थी क्योंकि पहले पटरानी रावटी के महलों में रहती थी। उस महल के बाई ओर की कोठड़ी में माताजी को हमेशा रखा जाता था और उसी महल की साल में माताजी का श्रृंगार, भोग व पूजा आदि सम्पन्न होता था। उसके बाद माताजी को मोती चौक में लाकर उन्हें भोग–पूजा आदि लगता था। पूजा में सेवगाणी, घुड़लावाली केसरबाई तथा अन्य जनाना सरदार पूजा में भाग लेते थे। महल में उपस्थित सभी रानियां व जनाना सरदार पूजा में भाग लेते थे। महारानीजी की अनुपस्थिति में परंपरा से कायदा था कि राजपुरोहिताईनजी पूजा करती थी।

जोधपुर में राजघराने की ओर से 'बोलावणी' की गणगौर की सवारी निकलती थी, जो सोजती गेट स्थित तत्कालीन महारानीजी (बाद में राजमाता एवं राजदादीजी) के नोहरे से निकलती थी। महाराजा उम्मेदसिंहजी के समय में यह नोहरा महारानी भटियाणीजी का नोहरा कहलाता था। यहीं पर डावड़िया व घररियां ठंडे का थाल व अन्य तैयारियां करती थी। गंगाबाई, हरजोतबाई, सुन्दरबाई व अन्य घररियां झालरे से लोटिया भरकर लाती थी और उनके श्रृंगार व गहनें आदि का खर्चा महारानीजी अपने निजी खर्चे से दिलवाती थी।[28] आठम को घुड़ला कुमारियां के द्वारा कुॅऐ से लाया जाता था और उसके लवाजमे में नाजर, कामदार, कामेती आदि सब जाते थे। गणगौर की सवारी के समय भी पूरा लवाजमा होता था। महारानीजी की गणगौर की सवारी नोहरा से गिरदी कोट बड़े धूमधाम से ले जाई जाती थी। जोशी, वेदिया, राजव्यास, राजपुरोहित आदि पाग व जामा पहने साथ जाते थे। माताजी की सवारी खुली पालकी में निकलती थी। आगे–आगे नर्तकियां नाचते हुए चलती थी। सबसे आगे महारानीजी की गणगौर की सवारी होती थी और पीछे अन्य जाति की गंवरों की सवारी चलती थी। शहर की भी स्त्रियां गणगौर पूजा में सम्मिलित होती थी। इस प्रकार जोधपुर में गणगौर माताजी का पर्व अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता था।

कोटा राज्य की अभिलेखीय सामग्री से ज्ञात होता है कि गणगौर के इस उत्सव पर अन्तःपुर में विशेष बैठक बुलाई जाती थी, जिसमें समाज की विभिन्न जातियो की स्त्रियां नाच–गान के साथ अन्तःपुर के द्वार से अन्दर प्रवेश करती थी। इन जातियों में अनेक जातियों की स्त्रियां जिनमें कूंजड़ियां, लखारन, भड़भूंजा आदि भी सम्मिलित होती थी और राजप्रासाद के आंगन में आकर नृत्य करती थी।[29] बैठक समाप्त होने पर इनको ससम्मान विदा किया जाता था।

जैसलमेर में भी गणगौर का त्यौहार बड़ी धूमधाम तथा उत्साह से मनाया जाता था। अपने वर की कामना हेतु यहॉ की बालिकायें 15 दिन पूर्व से ही गौरी माता की पूजा करना चालू कर देती थी। चैत्र शुक्ल चतुर्थी को जैसलमेर दरबार की ओर से गणगौर–मेला दुर्ग से रवाना होकर गड़सीसर की ओर प्रस्थान करता था। इस मेले में जैसलमेर की समस्त जातियों, धर्मो और सम्प्रदायों के लोग एक साथ चलते थे। दुर्ग से गड़सीसर तक नर–नारियों की भारी भीड़ दिखाई देती थी। इस सवारी में गौरीमाता की काष्ठ की बनी मूर्ति देखते ही बनती थी। हीरो, पन्नों व बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों से माता का स्वरूप बड़ा ही चित्ताकर्षण होता था। कहते हैं कि पहले यहॉ पर गौरीमाता के साथ ईसर की भी मूर्ति थी, मगर इस मूर्ति को बीकानेर वाले उठाकर ले गये थे। यहॉ की नारियां गणगौर–गीत गाते हुए इस मूर्ति को अपने सिर पर उठाये गड़सीसर तक ले जाती तथा वहॉ से पुनः वापस लाती थी ।

नाथद्वारा की गणगौर सबसे ज्यादा मशहुर थी तथा राजस्थान में यह अपना विशिष्ट स्थान रखती थी। सात दिवस तक निरन्तर चलने वाले गणगौर उत्सव की छटा यहॉ नित नये स्वरूप श्रंगार रूप में देखने को मिलती थी। सातों दिन सात रंग की अलग–अलग पोशाकों में गणगौर माता की सवारी निकाली जाती थी। सातवें दिन देवी को सुनहरे गोटे वाली पोशाक पहनाई जाती तथा गणगौर प्रतिमा उठाने वाली कन्याऐं भी उसी रंग की पोशाक पहनती थी। गणगौर की सवारी अगर लाल रंग की पोशाक में है तो सवारी में शामिल होने वाले जितने भी स्त्री–पुरूष होगें, उन सभी के वस्त्र भी लाल रंग के ही होते थे। नाथद्वारा ठिकाने की तरफ से रंगरेज रंग की कुण्डियां भरकर बैठ जाते और गणगौर माता की सवारी देखने के लिए जो दर्शक बाहर से आते वे अपने वस्त्र रंगरेज से जिस रंग की पोशाक गणगौर माता की होती उसी रंग में रंगवा लेते थे। दर्शकों से उसका कोई भी शुल्क नहीं लिया जाता था।[30] इस तरह ठिकाने से गणगौर माता की जो सवारी निकलती थी उसमें यह एक विशेष बात थी। गणगौर माता की पोशाक से लोगों को पता भी चल जाता था कि यह उत्सव कब समाप्त होने वाला है।

बीकानेर की महिलाऐं चेत्र में उपजी गुलाब की फसल में खिले गुलाब की कल्पना अपने पति से करती थी। लालसौट दौसा में गणगौर पर 'हेला' नामक ख्याल गायकी दंगल आयोजन की परंपरा आज भी मौजुद है।

सिरोही में गौरी की प्रतिमायें शहर की गलियों में से निकाली जाती थी। स्त्रियां गणगौर के इस त्यौहार पर गीत गाती और गरबा नृत्य करती थी।[31]

माउन्ट आबू के गरासिया भील जाति के लोगों में इस अवसर पर स्वतंत्र रूप से अपना जीवन साथी चुनने की परम्परा चली आ रही है, जिसे उनका समाज मान्यता देता है।

बूंदी में गणगौर पर्व नहीं मनाया जाता क्योंकि बूंदी में महाराव राजा बुद्धसिंह हाड़ा के समय अर्थात् 18वीं शताब्दी से ही गणगौर का त्यौहार मनाया जाना बंद हो गया था क्योंकि इस दिन राव बुध्दसिंह हाड़ा के भाई जोधसिंह अपनी रानी के साथ हाथी पर बैठे जलविहार कर रहे थे। हाथी के विचलित हो जाने से वे दोनों जल में डूब गये थे उसकी घटना यह है कि बुद्धसिंह तब विजेता शहजादे बहादुर शाह के साथ, जिसके जाजव के रणक्षेत्र में वे पक्षधर रहे थे, दिल्ली गये हुए थे। उनकी अनुपस्थिति में उनके प्रतिनिधि के रूप में जोधसिंह गणगौर की सवारी सजाकर अपनी रानी के साथ 'जैतसागर' तालाब पर नाव में सैर कर रहे थे। उन्हीं की आज्ञा से एक हाथी तालाब में छोड़ा गया, जिसने विचलित होकर नाव को टक्कर लगा दी, जिससे जोधसिंह उनकी रानी एवं गणगौर सहित तालाब में डूब गये। तभी से बूंदी में गणगौर का त्यौहार मनाना बंद हो गया।[32]इस घटना के फलस्वरूप राजस्थान में यह कहावत मशहुर हो गई –

'' हाड़ा ने ले डूबी गणगौर ''।[33]

राजस्थान के आदिवासियों में भी यह त्यौहार बड़े उत्साह से मनाया जाता है, क्योंकि आर्यदेव शिवजी और आर्यदेवी पार्वतीजी को द्रविड़ों ने भी अपना लिया था। इनके लोकगीतों में इन देव व देवी को जनसाधारण की तरह लोक–जीवन बिताते चित्रित किया गया है, जो लोक–व्यवहार और देव–जीवन में एकत्व की भावना प्रकट करते हैं। आर्य और द्रविड़ संस्कृति के समन्वय का यह त्यौहार एक अच्छा उदाहरण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उजले अतीत का विकसित वर्तमान राजस्थान, तारादत्त ''निर्विरोध'', पृष्ठ –14 दस्तूर कौमवार, भाग–25, 1757
2. राजस्थान गजेटियर, भाग–3, पृष्ठ –168
3. हकीकत बही, वि.सं.–1820 / 1840, श्यामदास, वीर विनोद, पृष्ठ –123
4. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–2, परिशिष्ठ–3, पृष्ठ –446, सं. डॉ. नारायणसिंह
5. जोधसिंह मेहता – आदिवासी भील।
6. राजस्थान गजिटियर, भाग–3.अ., पृ.–168.
7. चन्द्रकॅवर री वार्ता, पद्य–189, पत्र–55, 56, जबरसिंह, पृ.– 160.
8. डॉ. राजेन्द्रनाथ पुरोहित, मेवाड़ दरीखाने के रीति–रिवाज एवं संस्कार, पृ.–132.
9. Annals and antiquities of Raj. Vol.I , P. –462 .
10. वीरविनोद, भाग–1, पृ.–124.
11. डॉ. राघवेन्द्रसिंह मनोहर, राजस्थान के राजघरानों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.–164.
12. वीरविनोद, भाग–1, पृ.–124.
13. रजवाड़ी लोकगीत (तीज)–रानी लक्ष्मीकुमारी चूँडावत, पृ.–19.
14. प्रकाश नारायण नाटाणी, अपना राजस्थान, पृ.–260.
15. राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति, डॉ.नन्दलाल कल्ला, पृष्ठ –75
16. कवि कृष्णदत्त–कृत, प्रतापप्रकाश,सं. पं. गोपालनारायण बहुरा,पृ.–20.
17. उजले अतीत का विकसित वर्तमान राजस्थान, तारादत्त ''निर्विरोध'', पृष्ठ –111
18. राजदरबार और रनिवास, नन्दकिशोर पारीक, पृष्ठ –188 एवं प्रतापप्रकाश, पृ.–20.
19. Annals and antiquities of Raj. Vol.I , P. –459 .
20. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.–65.
21. Twilight Of The Magarajas, Sir Kenneth Fitze K. C. I. E., P.-39
22. प्रकाश व्यास, राजस्थान का सामाजिक इतिहास, (7वीं शताब्दी से 1950 ई.), पृ–206.
23. डॉ. नन्दलाल कल्ला, राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति, पृ.–76.
24. लोक संस्कृति के सोपान, कमलेश माथुर, पृष्ठ –11
25. रिलिजियस ट्रस्ट, फाइल नं.–6, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर.
26. डॉ. महेन्द्रसिंह नगर, मारवाड़ के राजवंश की सांस्कृतिक परंपरायें, (भाग–2),पृ.–475.
27. माजी साहिबा सोडावास द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार ।
28. डॉ. महेन्द्रसिंह नगर, मारवाड़ के राजवंश की सांस्कृतिक परंपरायें, (भाग–2),पृ.–478.
29. प्रकाश व्यास, राजस्थान का सामाजिक इतिहास,(7वीं शताब्दी से 1950 ई.) पृ.–205.
30. लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, राजस्थान के रीति–रिवाज, पृ.–66.
31. प्रकाश नारायण नाटाणी, अपना राजस्थान, पृ.–263.
32. डॉ. राघवेन्द्रसिंह मनोहर, राजस्थान के राजघरानों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.–157.
33. वही।

❖◆❖